तित्थयर

वर्ष ५ अंक ३ : जुलाई १९८१

जैन भवन

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

PRAKASH TRADING COMPANY

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON **Telephone : 22-4110 22-3323**

THE BIKANER WOOLLEN MILLS

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ५ : अंक ३

जुलाई १९८१

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

प्राचीन जैन तीर्थ ६९

अग्निका पुत्र ७८

जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ ८४

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ९६

बाहुबली, मथुरा

प्राचीन जैन तीर्थ

प० कल्याण विजय गणी

[पूर्वानुवृत्ति]

(७) चमरोत्पात

भगवान महावीर छद्मावस्था के बारहवें वर्ष में वैशाली की तरफ से विहार करते हुए सुंसुमारपुर नामक स्थान के निकटवर्ती उपवन में अशोक वृक्ष के नीचे ध्यानारूढ़ थे, तब चमरेन्द्र नामक असुरेन्द्र वहाँ आया और महावीर की शरण लेकर स्वर्ग के इन्द्र शक्र पर चढ़ाई करने गया और सुधर्मा सभा के द्वार तक पहुँचकर शक्र को डराने धमकाने लगा। शक्रेन्द्र ने भी चमरेन्द्र को मार भगाने के लिए अपना वज्रायुध उसकी तरफ फेंका। आग की चिनगारियों को उगलते हुए वज्र को देखकर चमर जिस रास्ते से आया था उसी रास्ते से भागा। शक्र ने सोचा चमरेन्द्र यहाँ तक किसी भी महर्षि तपस्वी की शरण लिए बिना नहीं आ सकता, देखें यह किसकी शरण लेकर आया है। इन्द्र ने अवधिज्ञान से जाना कि चमर महावीर का शरणागत बनकर आया है, और वहीं जा रहा है। वह तुरन्त वज्र को पकड़ने दौड़ा। चमरेन्द्र अपना शरीर सूक्ष्म बनाकर भगवान महावीर के चरणों के बीच घुसा, वज्र प्रहार होने के पहले ही इन्द्र ने वज्र को पकड़ लिया। इस घटना से सुंसुमारपुर और उसके आस पास के गाँवों में सनसनी फैल गयी। लोगों के झुण्ड के झुण्ड घटना स्थल पर आए और घटना की वस्तु स्थिति को जानकर भगवान महावीर के चरणों में झुक पड़े। भगवान महावीर तो वहाँ से विहार कर गए, परन्तु लोगों के हृदय में उनके शरणागत रक्षकत्व की छाप सदा के लिए रह गई, और घटनास्थल पर एक स्मारक बनवाकर शरणागत वत्सल भगवान महावीर की मूर्त्ति प्रतिष्ठित की। उस प्रदेश के श्रद्धालु लोग उसे बड़ी श्रद्धा से पूजते तथा कार्वांवी यात्रीगण सार्थवाह आदि अपनी यात्रा की निर्विघ्न पूर्त्ति के लिए भगवान की शरण लेकर आगे बढ़ते थे। यही भगवान महावीर का स्मारक मन्दिर आगे

आकर जैनों का चमरोत्पात [1] नामक तीर्थ बन गया, जिसको श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी ने आचारांग निर्युक्ति में स्मरण वन्दन किया है।

चमरोत्पात तीर्थ आज हमारे विच्छिन्न (भूले हुए) तीर्थों में से एक है। यह स्थान आधुनिक मिर्जापुर जिले के एक पहाड़ी प्रदेश में था, ऐसा हमारा अनुमान है।

(८) शत्रुंजय तीर्थ

शत्रुंजय आज हमारा सर्वोत्तम तीर्थ माना जाता है, इसका महात्म्य गाने में शत्रुंजय महात्म्यकार ने कुछ कसर नहीं रखी। यह पर्वत भगवान ऋषभदेव का मुख्य विहार क्षेत्र और भरत चक्रवर्ती का सुवर्णमय चैत्य निर्माण का स्थान माना गया है। परन्तु हमारे प्राचीन साहित्य, सूत्रादि में इसका विशेष विवरण नहीं मिलता। ज्ञाताधर्मकथांग के सोलहवें अध्ययन में पाँच पाण्डवों के शत्रुंजय पर अनशन कर निर्वाण प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्तकृद्दशांग सूत्र में भगवान नेमिनाथ जी के अनेकों साधुओं के शत्रुंजय पर्वत पर तपस्या द्वारा मुक्ति पाने का वर्णन मिलता है। इससे इतना तो सिद्ध है कि शत्रुंजय पर्वत हजारों वर्षों से जैनों का सिद्ध क्षेत्र बना हुआ है, और इस स्थान को भगवान ऋषभदेव का विहारस्थल न मानकर नेमिनाथ का तथा उनके श्रमणों का विहार क्षेत्र मानना विशेष उपयुक्त होगा।

आवश्यक निर्युक्ति भाष्य, चूर्णि आदि से यह प्रमाणित होता है कि भगवान ऋषभदेव उत्तर, पूर्व और पश्चिम भारत के देशों के ही बीच रहे थे। दक्षिण भारत में अथवा सौराष्ट्र भूमि में वे कभी नहीं पधारे। जैन शास्त्रोक्त भारतवर्ष के नक्शे के अनुसार आज का सौराष्ट्र ऋषभदेव के समय में जलमग्न होगा अथवा एक अन्तरीप होगा। इसके विपरीत नेमिनाथ के समय में यह सौराष्ट्र भूमि समुद्र के बीच होते हुए भी मनुष्यों के बसने योग्य हो चुकी थी। इसी कारण से जरासंघ के आतंक से बचने के लिए यादवों ने

---

1 चमरेन्द्र के शकेन्द्र पर चढ़ाई करने के विषय पर भगवती सूत्र में विस्तृत विवरण मिलता है। परन्तु उसमें चमरोत्पात के स्थल पर स्मारक बनने और तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध होने की सूचना नहीं है। मालूम होता है भगवान महावीर के प्रवचन का संकलन होने के समय तक वह स्थान जैनतीर्थ के रूप में प्रसिद्ध नहीं हुआ था।

इस प्रदेश का आश्रय लिया था, तथा इन्द्र के आदेश से उनके लिए कुबेर ने वहाँ द्वारिका नगरी का निर्माण किया था। भगवान नेमिनाथ ने उसी द्वारिका के बाहर रैवतक पर्वत के समीप प्रव्रज्या ली थी, और बहुधा इसी प्रदेश में विचरे। इस वास्तविक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए सौराष्ट्र प्रदेश तथा उज्जयंत (गिरनार) और शत्रुंजय पर्वत को भगवान नेमिनाथ के विहार क्षेत्र मानेंगे तो हम वास्तविकता के अधिक समीप रहेंगे।

(६) मथुरा के देव निर्मित स्तूप

मथुरा के देव निर्मित स्तूप का यद्यपि मूल आगमों में उल्लेख नहीं मिलता, तथापि छेद-सूत्रों तथा अन्य सूत्रों के भाष्य, चूर्णि आदि में इसके उल्लेख मिलते हैं। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि मथुरा नगरी के बाहर वन में एक क्षपक (तपस्वी जैन साधु) तपस्या कर रहा था। उसकी तपस्या और संतोष वृत्ति से वहाँ की वन देवी उसकी विनम्र भक्त बन गयी। प्रतिदिन वह साधु को वन्दना करती और कहती मेरे योग्य सेवा कार्य कहना। क्षपक कहता मुझे तुम जैसी अविरत देवी से कुछ कार्य नहीं। देवी जब भी क्षपक को सेवा कार्य के लिए पूछती तो क्षपक भी अपनी तरफ से वही उत्तर देता था। एक समय देवी के मन में आया तपस्वी बार-बार मुझे कोई कार्य न होने को कहा करते हैं, तो अब ऐसा कोई उपाय करूँ कि यह मेरी सहायता पाने को इच्छुक बने। उसने मथुरा के निकट एक बड़े विशाल चौक में रात भर में एक बड़ा स्तूप खड़ा कर दिया, दूसरे दिन उस स्तूप को जैन तथा बौद्ध धर्म के अनुयायी अपना-अपना मानकर उस पर कब्जा करने के लिए तत्पर हुए। जैन लोग स्तूप को अपना बताते थे तथा बौद्ध अपना। स्तूप में लेख अथवा किसी सम्प्रदाय की देवमूर्त्ति न होने के कारण उसने जैन-बौद्धों के बीच झगड़ा खड़ा कर दिया। परिणाम स्वरूप दोनों सम्प्रदायों के नेता न्याय के लिए राजा के पास पहुँचे, और स्तूप पर कब्जा दिलाने की प्रार्थना की। राजा तथा उनका न्याय विभाग स्तूप जैनों का है अथवा बौद्धों का, इसका निर्णय नहीं दे सके।

जैन संघ ने अपने स्थान में मिलकर विचार किया कि यह स्तूप दिव्य शक्ति से बना है, और देव सहायता से ही किसी सम्प्रदाय का कायम हो सकेगा। संघ में देव सहायता किस प्रकार प्राप्त की जाय, इस बात पर विचार करते समय जानने वालों ने कहा, वन में अमुक क्षपक के पास वन देवी आया करती है, अतः क्षपक द्वारा उस देवता से स्तूप प्राप्ति का उपाय पूछना

चाहिए। संघ में सर्व सम्मति से यह निर्णय हुआ कि दो साधु क्षपक मुनि के पास भेजकर उनके द्वारा इस विषय में वन देवी की सहायता माँगी जाय।

प्रस्ताव के अनुसार श्रमण युगल क्षपक मुनि के पास गये और उन्हें संघ के प्रस्ताव से वाकिफ किया। क्षपक ने भी यथा शक्ति संघ का कार्य सम्पन्न करने का आश्वासन देकर आए हुए मुनियों को वापिस विदा किया।

नित्य नियमानुसार वन देवी क्षपक के पास आयी और वन्दनपूर्वक सेवा कार्य सम्बन्धी नित्य की प्रार्थना दोहरायी। क्षपक ने पूछा, "एक कार्य के लिए तुम्हारी सलाह आवश्यक है।" देवी ने कहा, "वह कार्य क्या है?" क्षपक बोले, "महीनों से मथुरा के देव निर्मित स्तूप के सम्बन्ध में जैन-बौद्धों के बीच झगड़ा चल रहा है, राजा का न्यायाधिकरण भी परेशान हो रहा है, पर इसका निर्णय नहीं हो रहा है। मैं चाहता हूँ कि तुम कोई ऐसा उपाय बताओ और सहायता करो कि यह स्तूप सम्बन्धी झगड़ा तुरन्त मिटे और स्तूप जैन सम्प्रदाय का प्रमाणित हो।"

वन देवी ने कहा, "तपस्वी जी महाराज! आज मेरी सेवा की आवश्यकता हुई न?" तपस्वी बोले, "अवश्य यह कार्य तो तुम्हारे सहानुभूति से ही सिद्ध हो सकेगा।"

देवी ने कहा, "आप अपने संघ को सूचित करें कि वह पुनः राजसभा में यह प्रस्ताव उपस्थित करें: यदि स्तूप पर स्वयं श्वेत ध्वज फरकने लगे तो स्तूप जैनों का समझा जाय और लाल ध्वज तो बौद्धों का।"

क्षपक ने मथुरा जैन संघ के नेताओं को अपने पास बुलाकर वन देवी के उक्त प्रस्ताव की सूचना दी। संघ नायकों ने न्यायाधिकरण के सामने वैसा ही प्रस्ताव उपस्थित किया। राजा तथा न्यायाधिकरणों को प्रस्ताव पसन्द आया। बौद्ध नेताओं से इस विषय में पूछा गया तो बौद्धों ने भी प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

राजा ने स्तूप के चारों ओर रक्षक नियुक्त कर दिए। कोई भी व्यक्ति स्तूप के निकट न जावे इसका पूरा-पूरा प्रबन्ध किया। इस व्यवस्था और प्रस्ताव से नगर भर में एक प्रकार का कौतुक फैल गया। दोनों सम्प्रदाय के भक्तजन अपने-अपने इष्ट देवों का स्मरण कर रहे थे, तथा निष्पक्ष नागरिक-जन कब रात बीते और फहराती हुई ध्वजा देखें, इस चिन्ता से भगवान भास्कर से जल्दी उदित होने की प्रार्थनाएँ कर रहे थे।

सूर्योदय होने के पूर्व ही मथुरा के नागरिक हजारों की संख्या में स्तूप के इर्द-गिर्द स्तूप की ध्वजा देखने के लिए एकत्रित हो गए। सूर्य के

पहले ही उनके सारथी ने स्तूप के शिखर स्थित दण्ड तथा ध्वज पर प्रकाश फेंका। जनता को अरुण प्रकाश में सफेद वस्त्र सा दिखाई दिया। जैन जनता के हृदय में आशा की तरंग बहने लगी। इसके विपरीत बौद्ध धर्मियों के दिल निराशा का अनुभव करने लगे। सूर्यदेव ने उदयाचल के शिखर से अपनी किरण फेंककर सबको निश्चय करा दिया कि स्तूप के शिखर पर श्वेत ध्वजा फरक रही है। जैनधर्मियों के मुखों से एक साथ "जैनं जयतु शासनम्" की ध्वनि निकल पड़ी और मथुरा के देव निर्मित स्तूप का स्वामित्व जैनसंघ के हाथों में सौंप दिया गया।

मथुरा स्थित देव निर्मित स्तूप की उत्पत्ति का उक्त इतिहास सूत्रों के भाष्यों, चूर्णियों और टीकाकारों के भिन्न-भिन्न वर्णनों को व्यवस्थित करके लिखा है। आचार्य जिनप्रभ सूरि कृत 'मथुरा कल्प' में पौराणिक ढंग से इस स्तूप का विशेष विवरण दिया है, जिसका संक्षिप्त सार पाठकगण के अवलोकनार्थ नीचे दिया जाता है—

श्री सुपार्श्वनाथ जिन के तीर्थवर्ती धर्मघोष और धर्मरुचि नामक दो तपस्वी मुनि एक समय विहार करते हुए मथुरा पहुँचे। उस समय मथुरा की लम्बाई बारह योजन तथा विस्तार नौ योजन परिमित था। उसके चारों तरफ दुर्ग बना हुआ था और पास में दुर्ग को नहलाती हुई यमुना नदी बह रही थी। मथुरा के भीतर तथा बाहर अनेक कूप, बावड़ियाँ बनी हुई थीं। नगरी गृह पंक्तियों, हाट-बाजारों और देव-मन्दिरों से सुशोभित थी। इसकी बाह्यभाग भूमि अनेक वनों-उद्यानों से घिरी हुई थी। उपर्युक्त मुनियुगल ने मथुरा के भूतरमण नामक उद्यान में चातुर्मासिक तप के साथ वर्षा चातुर्मासिक की स्थिरता की। मुनियों के तप, ध्यान, शांति आदि गुणों से आकर्षित होकर उद्यान की अधिष्ठाता कुबेरा नामक देवी उनके पास रात्रि के समय जाकर कहने लगीं, "मैं आपके गुणों से बहुत ही संतुष्ट हूँ, मुझसे वरदान माँगिए।" मुनियों ने कहा, "हम निसंग श्रमण हैं, हमें किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं।" यह कहकर उन्होंने कुबेरा को धर्म का उपदेश देकर जैनधर्म की श्रद्धा करायी।

चातुर्मास की समाप्ति के लगभग कार्त्तिक सुदी अष्टमी को तपस्वियों ने अपने निवास स्थान की स्वामिनी जानकर कुबेरा को कहा, "हे श्राविका! चातुर्मास पूरा होने आया है, हम यहाँ से चातुर्मास की समाप्ति होते ही विहार करेंगे। तुम जिनदेव की पूजा भक्ति तथा जैनधर्म की उन्नति में सहयोग देती रहना।" देवी ने तपस्वियों को वहीं ठहरने की प्रार्थना की,

परन्तु साधु का एक स्थान पर रहना आचार विरुद्ध बताकर उन्होंने उसकी प्रार्थना को अस्वीकृत कर दिया। कुबेरा ने कहा, "यदि आपका यही निश्चय है तो मेरे योग्य धर्मकार्य का आदेश कीजिए, क्योंकि देव दर्शन अमोघ होता है।" साधुओं ने कहा, "यदि तेरा आग्रह है तो हमें संघ के साथ मेरु पर्वत पर ले जाकर जिन चैत्यों का वन्दन करा दे।" देवी ने कहा, "आप दो को मैं वहाँ ले जा सकती हूँ, मथुरा का संघ साथ में होगा तो मुझे भय है कि मिथ्या दृष्टि देव मेरे गमन में विघ्न करेंगे।" साधु बोले, "यदि संघ को वहाँ ले जाने की तेरी शक्ति नहीं है तो हम दो का वहाँ जाना उचित नहीं है। हम शास्त्र बल से ही मेरु पर्वत स्थित जिन चैत्यों का दर्शन-वन्दन करेंगे।" तपस्वियों के कथन को सुनकर लज्जित-सी होकर कुबेरा बोली, "भगवन् ! यदि ऐसा है तो मैं स्वयं जिन प्रतिमाओं से शोभित मेरु पर्वत का आकार यहाँ बना देती हूँ, वहाँ पर संघ के साथ आप देववन्दन कर लें।" साधुओं ने देवी की बात को स्वीकार किया। तब देवी ने सुवर्णमय, नानारत्न शोभित, अनेक देवपरिवारित, तोरण ध्वज मालाओं से अलंकृत, जिसका शिखर छत्र-त्रय से सुशोभित है ऐसा स्तूप, रात भर में निर्माण किया जो मेरु पर्वत की तरह तीन मेखलाओं से सुशोभित था। प्रत्येक मेखला में प्रत्येक दिशा में पंचवर्ण रत्नमय प्रतिमाएँ सुशोभित थीं, मूल नायक के स्थान पर भगवान सुपार्श्वनाथ का बिम्ब प्रतिष्ठित था।

प्रभात होते ही लोग स्तूप के पास एकत्र हुए, और आपस में विवाद करने लगे। कोई कहते थे यह वासुकी नाग के लांछन वाले स्वयं भूदेव हैं, तब दूसरे कहते थे ये शेषशायी भगवान् नारायण हैं। इसी प्रकार कोई ब्रह्मा, कोई धरणेन्द्र (नागराज), कोई सूर्य तो कोई चन्द्रमा कहकर अपनी जानकारी बता रहे थे। बौद्ध कहते थे यह स्तूप नहीं किन्तु 'बुद्धाण्डक' है। इस विवाद को सुनकर मध्यस्थ पुरुष कहते थे यह दिव्य शक्ति से बना है और दिव्य शक्ति से ही इसका निर्णय होगा, तुम आपस में क्यों लड़ते हो ? अपने-अपने इष्ट देव को वस्त्रपट पर चित्रित करवाकर निज-निज मण्डल के साथ ठहरो, जिसका स्तूप स्थित देव होगा उसी का चित्रपट रहेगा, शेष व्यक्तियों के पट्ट स्थित देव भाग जायेंगे। जैन संघ ने भी सुपार्श्वनाथ का चित्रपट बनवाया। बाद में अपनी-अपनी मंडलियों के साथ चित्रित चित्रपटों की पूजा करके सब धार्मिक सम्प्रदाय वाले उनकी भक्ति करने लगे। नवम् दिन की रात्रि का समय था, सभी सम्प्रदायों के भक्तजन अपने-अपने पट्ट सामने रखकर अपने-अपने ध्येय देव का गुणगान कर रहे थे। बराबर अर्द्धरात्रि

व्यतीत हुई, तब प्रचण्ड पवन प्रारम्भ हुआ। पवन से तृणरेती उड़े इसमें तो बड़ी बात नहीं थी, परन्तु उसकी प्रचण्डता यहाँ तक बढ़ चली कि उसमें पत्थर तक उड़ने लगे। तब लोगों का धैर्य टूटा और वे प्राण बचाने की चिन्ता से वहाँ से भागे। लोगों ने अपने-अपने सामने जो देवपूजा पट्ट रखे थे, वे लगभग सब के सब प्रचण्ड पवन में विलीन हो गए, केवल सुपार्श्वनाथ का एक पट्ट वहाँ रह गया। हवा का बवण्डर शान्त हुआ, लोग फिर एकत्रित हुए और सुपार्श्वनाथ का पट्ट देखकर बोले ये 'अरिहन्त' देव हैं और यह स्तूप भी इसी देव की मूर्त्तियों से अलंकृत है। लोग उस पट्ट को लेकर सारे मथुरा नगर में घूमे। तब से 'पट्ट यात्रा' प्रवृत्त हुई।

इस प्रकार धर्मघोष तथा धर्मरुचि मुनि मेरू पर्वताकार देव निर्मित स्तूप में देव वन्दन कर, नया तीर्थ प्रकाश में लाए और जैन संघ को आनन्दित कर मथुरा से विहार कर गए। क्रमशः कर्म क्षय कर वे संसार से मुक्त हुए।

कुबेरा देवी स्तूप की तब तक रक्षा करती रही, जब तक कि पार्श्वनाथ का शासन प्रचलित न हुआ।

एक समय भगवान पार्श्वनाथ विहार क्रम से मथुरा पधारे और धर्मोपदेश करते हुए भावी दुषमाकाल के भावों का निरूपण किया। पार्श्वनाथ के वहाँ से विहार करने के पश्चात् कुबेरा ने संघ को बुलाकर कहा, "भविष्य में कनिष्क का समय आनेवाला है। कालानुमान से राजादि शासक लोग लोभ-ग्रस्त बनेंगे और इस स्वर्णमय स्तूप को नुकसान पहुँचावेंगे। अतः स्तूप को ईंटों के पर्दे से ढाँक दिया जाय, भीतर की मूर्त्तियों की पूजा मैं अथवा मेरे बाद जो नयी 'कुबेरा' उत्पन्न होगी, वह करेगी, संघ इष्टकमय स्तूप में भगवान पार्श्वनाथ की प्रस्तरमय मूर्त्ति प्रतिष्ठित करके पूजा किया करे।" देवी की बात भविष्य में लाभदायक जानकर संघ ने मान्य की और देवी ने विचारित योजनानुसार मूल स्तूप को ईंटों के स्तूप से ढाँक दिया।

इष्टकमय स्तूप पुराना हो जाने से उसमें से ईंटे निकलने लगी थी, इसलिए संघ ने पुराने स्तूप को हटाकर नया पाषाणमय स्तूप बनवाने का निर्णय किया, परन्तु कुबेरा ने स्वप्न में कहा, "इष्टकमय स्तूप को अपने स्थान से न हटाइए, इसको मजबूत करना हो तो ऊपर पत्थर का खोल चढ़वा दें।" संघ ने वैसा ही किया। आज भी देव निर्मित स्तूप को अदृश्य रूप से देव पूजते हैं तथा इसकी रक्षा करते हैं। हजारों प्रतिमाओं से युक्त देवलों, रहने के स्थानों, सुन्दर गन्ध कुटी तथा चैत्यनिका अम्बा, अनेक क्षेत्र पाल आदि के निकरों से यह स्तूप सुशोभित है।

पूर्वोक्त भट्टिसूरि ने जो कि ग्वालियर के राजा आम के धर्मगुरु थे, मथुरा में वि० सं० ८२६ में भगवान महावीर का बिम्ब प्रतिष्ठित किया।

मथुरा के देव निर्मित स्तूप की उत्पत्ति का निरूपण शास्त्रीय प्रतीकों तथा 'मथुरा कल्प' के आधार से ऊपर दिया गया है। कल्पोक्त वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण हो सकता है, परन्तु एक बात तो निश्चित है कि यह स्तूप है अति प्राचीन और भारत में विदेशियों के आने के समय यह स्तूप जैनों का एक महिमास्पद तीर्थ बना हुआ था। और उस प्रसंग पर भारतवर्ष के कोने-कोने से तीर्थ यात्रिक यहाँ एकत्र होते थे, ऐसा प्राचीन साहित्य के उल्लेखों से सिद्ध होता है। इस बात के समर्थन में 'निशीथ भाष्य' की एक गाथा तथा उसकी चूर्णि का उद्धरण नीचे देते हैं—

थूम मह सड्ढि समणी बोहिय हरणं च निवसुथालावे।
मग्गेण य अक्कंदे कयम्मि युद्धेण मोएति ॥

अर्थात् मथुरा के स्तूप महोत्सव पर जैन श्राविकाएँ तथा जैन साध्वियाँ जा रही थीं, मार्ग में बोधिक लोग उन्हें घेरकर अपने साथ ले चले। आगे जाते-जाते मार्ग के निकट आतापना करते हुए एक राजपुत्र जैन मुनि को देखा। उन्हें देखते ही यात्रार्थिनियों ने आक्रन्दन (शोर) किया, जिसे सुनकर मुनि उनकी तरफ आए और बोधिकों से युद्ध कर श्राविकाओं को उनके पंजे से छुड़ाया।

उक्त गाथा की विशेष चूर्णि नीचे लिखे अनुसार है—

महुराए नयरीए थूभो देवनिम्मिओ तस्स महिमा निमित्तं सड्ढीतो समणीहिं समं निग्गयातो रायपुत्तो तत्थ अदूरे अयावन्तो चिट्ठई। ता सड्ढी समणीतो बोहियेहिं गहियातो तेणं तेणं आणिया तो ता ताहि तं साहुं दट्ठूणं अक्कंदो कओ ततो रायपुत्तेण साहुणा युद्धं दाऊण मोइयातो, बोधिका अनार्य म्लेच्छाः। (नि० वि० चू० २६८-२)

चूर्णि का भावार्थ गाथा के नीचे दिए हुए अर्थ में आ चुका है, इसलिए चूर्णिकार के अन्तिम शब्द 'बोधिक' पर ही थोड़ा सा ऊहापोह करेंगे।

जैन सूत्रों के भाष्यादि में 'बोहिया' शब्द बार-बार आया है। प्राचीन संस्कृत टीकाकार 'बोहिय' शब्द का संस्कृत "बोधिक" शब्द बनाकर कहते हैं, 'बोधिक' पश्चिम दिशा के म्लेच्छों को कहते हैं। प्राकृत टीकाकार कहते हैं, मनुष्यों का अपहरण करने वाले म्लेच्छ 'बोहिया' कहलाते हैं।

हमारा अनुमान है कि 'बोधिक' अथवा 'बोहिय' कहलाने वाले लोग बोहीमिया के रहने वाले विदेशी थे। वे युनानियों के भारत पर आक्रमण के समय भारत की पश्चिम सीमा पर इधर-उधर पहाड़ी प्रदेशों में फैल गए थे। मौर्य चन्द्रगुप्त के शासन काल में भारत के पश्चिम तथा उत्तर प्रदेशों में घुसकर ये मनुष्यों को पकड़-पकड़ कर ले जाते और विदेशों में पहुँचकर गुलाम खरीददारों के हाथ बेच दिया करते थे। हमारा यह अनुमान ठीक हो तो इसका अर्थ यही हो सकता है कि मथुरा का स्तूप मौर्यकाल का होना चाहिए।

मथुरा का देव निर्मित स्तूप आज भी मथुरा के कंकाली टीले के रूप में भग्नावस्था में पड़ा है। इसमें से मिली हुई कुषाण कालीन जैन मूर्त्तियाँ, आयाग पट, जैन साधुओं की मूर्त्तियाँ आदि ऐतिहासिक वस्तुएँ आज भी मथुरा तथा लखनऊ के सरकारी संग्रहालयों में सुरक्षित है। इन पर राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के राज्यकाल के लेख भी उत्कीर्ण हैं। इससे ज्ञात होता है कि यह तीर्थ विक्रम की दूसरी शताब्दी तक उन्नत दशा में था। उत्तर भारत में विदेशियों के आक्रमण से खास कर श्वेत हूणों के समय में जैन श्रमण तथा जैन गृहस्थ सामूहिक रूप से दक्षिण भारत की तरफ तथा राजस्थान, मेवाड़, मालवा आदि में चले गये। अतः उत्तर भारत के अन्य जैन तीर्थ रक्षण के अभाव से वीरान व नष्ट-भ्रष्ट हो गए हैं, जिनमें मथुरा का देव निर्मित स्तूप भी एक है।

(१०) सम्मेद शिखर तीर्थ

सूत्रोक्त जैन तीर्थों में सम्मेद शिखर (पारसनाथ हिल) का नाम भी परिगणित है। आवश्यक निर्युक्तिकार कहते हैं कि ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ और वर्धमान (महावीर) इन चार तीर्थंकरों को छोड़कर शेष अवसर्पिणी काल के बीस तीर्थंकर सम्मेद शिखर पर मुक्त हुए थे। इसलिए तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि होने के कारण इसे सम्मेद शिखर तीर्थ कहते हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दी में निगम गच्छ के प्रस्थापक आचार्य इन्द्रनन्दि के बनाए हुए निगमों में एक निगम सम्मेद शिखर के वर्णन में लिखा गया है। जिसमें इस तीर्थ का बहुत ही अद्भुत वर्णन किया है। आज से ४० वर्ष पहले ये निगम पोडाय (कच्छ) के भण्डार में से मँगवाकर हमने पढ़े थे।

ऊपर लिखे सूत्रोक्त दश प्राचीन तीर्थों के अतिरिक्त वैभारगिरि, विपुलाचल, कोशल की जीवन्त स्वामी प्रतिमा, अवन्ती की जीवन्त स्वामी प्रतिमा आदि अनेक प्राचीन पवित्र तीर्थों के उल्लेख सूत्रों के भाष्य आदि में मिलते हैं, परन्तु उन सबका एक निबन्ध में निरूपण करना अशक्य जानकर उन्हें छोड़ देते हैं।

अग्निकापुत्र

[जैन कथानक]

इतिहास की परीक्षा के लिए तैयारी कर रहा था। उस समय कितनी रात हो चुकी थी नहीं कह सकता। इतिहास की किताब हाथ में लिए-लिए ही आँख लग गयी। उस नींद में ही एक स्वप्न देखा। सहसा न जाने किसका तो स्पर्श पाकर जाग उठा। लगा कोई कह रहा है, "वर्षधर, उठो-उठो। और कितना सोओगे? आज सुबह ही तो हमें यात्रा पर जाना है याद नहीं है क्या?"

मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा। बोला—"हाँ, याद है।"

"तब फिर अभी तक सो क्यों रहे हो? जल्दी तैयार हो जाओ। नौका घाट पर लग गयी है।"

मैं उठा और झटपट तैयार हो गया।

कई दिनों से हम महाराज उदायी की नवीन राजधानी के लिए स्थान निर्वाचन करने को भ्रमण कर रहे हैं। चम्पा में अब महाराज का मन नहीं लग रहा है। दिवंगत पिता कुणिक की स्मृति उनके चित्तपट पर बार-बार उदित होकर उन्हें विषन्न-सा बना रही है। वृद्ध अमात्य ने उनके मनोरंजन की व्यवस्था में कोई कमी नहीं रखी। किन्तु कोई भी वस्तु उन्हें आनन्द ही नहीं दे पा रही थी। अन्ततः आर्य सोमप्रभ बोले—"महाराज, आपके पितामह महाराज श्रेणिक की मृत्यु के पश्चात् आपके पिताश्री कुणिक का चित्त भी उद्विग्न हो गया था। अतः उन्होंने राजधानी को राजगृही से चम्पापुर स्थानान्तरित कर दिया था। अब आप भी उसी भाँति ही राजधानी को स्थानान्तरित कर दीजिए। ताकि आपके चित्त को शान्ति मिल सके।" बात महाराज को रुच गयी। लेकिन समस्या यह उठ खड़ी हुई कि राजधानी स्थानान्तरित करे कहाँ? कुणिक ने अंग राज्य जय किया था। चम्पा उनके अधिगत हो गयी थी। एतदर्थ राजधानी को चम्पा में स्थानान्तरित करने में उन्हें कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। किन्तु इस बार समस्या जटिल हो उठी थी। कितने ही स्थानों के नाम बताए गए पर कोई भी उन्हें नहीं जँचा। अन्त में तय हुआ वे राजधानी स्थानान्तरित न कर एक नवीन राजधानी ही स्थापित करेंगे। इससे उनका यश और कीर्त्ति दोनों ही की वृद्धि होगी। वह राजधानी ऐसी होगी कि इतिहास

के पृष्ठों पर चिरकाल के लिए वह स्वमहिमा में उज्ज्वल बनी रहेगी। किन्तु वह राजधानी बनाएँ कहाँ ? उसके लिए उपयुक्त भूमि निर्वाचन की आवश्यकता थी। अतः महाराज ने आचार्य भृगुपाद को बुलवाया। उन दिनों नैमित्तिकों में आचार्य भृगुपाद का स्थान सर्वोच्च था। मैं और जो मुझे उठाने आया था वह बर्षोली भी भृगुपाद के समीप रहकर ही निमित्त शास्त्र का अध्ययन कर रहे थे। सूत्रधार, स्थपति और हमलोग आज कई दिन से राजधानी के लिए स्थान खोजते फिर रहे हैं। ""पर उपयुक्त स्थान अभी तक नहीं मिल पाया था। आज हमलोगों ने नौका पर चढ़कर गंगा के बाएँ किनारे को देखते हुए पश्चिम की ओर जाना निश्चित किया।

हम जब घाट पर पहुँचे उस समय तक सूर्योदय नहीं हुआ था। तरल कुहासे की भाँति एक नील अन्धकार चारों ओर व्याप्त था। हम भगवान का नाम स्मरण कर नौका पर चढ़ गए।

अनुकूल समय पर अनुकूल हवा के रुख में नौका चल पड़ी। हम पश्चिम की ओर जा रहे थे, अतः हमारी नौका पाल की सहायता से मन्थर गति से अग्रसर होती गयी।

गुरूदेव जिस समय आर्य सोमप्रभ के साथ मन्त्रणा में व्यस्त थे मैं नौका के पट्ट पर आकर बैठ गया। सूर्योदय हो रहा था। उनके कोकिल नेत्रों की भाँति लाल-पीली किरणें समस्त भुवन में अरुणायित हो रही थीं। नदी का जल भी लोहित-सा दिख रहा था। वह लोहित प्रवाह मेरे मन में विभिन्न भावों की सृष्टि कर रहा था। मैं स्वयं की बात ही सोच रहा था—हम जिस कार्य के लिए निकले हैं क्या वह पूर्ण होगा ? होने पर भी उसमें मेरा भाग कितना होगा ? काश ! यदि मैं दिखा पाऊँ कि यह रहा वह स्थान ? तब तो इतिहास में सदा-सदा के लिए अमर हो जाऊँगा। किन्तु नहीं, ऐसा नहीं होगा। इतिहास में मात्र इतना ही लिखा जायगा कि महाराज उदायी ने अमुक स्थान पर नवीन राजधानी का निर्माण करवाया। मेरा नाम तो दूर आचार्य भृगुपाद भी वहाँ कहीं उल्लिखित नहीं होंगे। इस जल प्रवाह की भाँति ही तो है काल का अखण्ड प्रवाह। और इस प्रवाह में तृणखण्ड की तरह ही हम भी कहीं बह जाएँगे। कोई हमें स्मरण नहीं करेगा। यही सब सोचते-सोचते हृदय में एक कैसी व्यथा-सी अनुभूत होने लगी।

सूर्यदेव ने क्रमशः अरुणवर्ण परित्याग कर श्वेत वर्ण धारण कर लिया। तट की वृक्षराजि भी कालिमा परित्याग कर हरिद्वर्णा हो गयी थी। एक

वृक्ष पर अजस्र श्वेत पुष्पों को विकसित होते देखा। सोचने लगा—इस विकसित होने की क्या सार्थकता है? क्या इतिहास के पृष्ठों पर यह लिखा जाएगा कि अमुक दिन अमुक वृक्ष पर अजस्र श्वेत पुष्प खिले थे? किन्तु उस पुष्प संभार से वृक्ष का अजस्र आनन्द जैसे उमड़-उमड़ कर बहा जा रहा था। तभी मन में आया खिलने में ही तो खिलने की सार्थकता है। इस अनुभव ने मन को आनन्द से आपूरित कर दिया। इतिहास के पृष्ठ पर चाहे मेरा नाम न रहे किन्तु यदि मैं दिखा सका राजधानी के लिए उपयुक्त स्थान तो वही होगी मेरी परम प्राप्ति। उस प्राप्ति से बड़ा संसार में और क्या आनन्द हो सकता है? आनन्द का वह सिहरन मेरे मेरूदण्ड के भीतर से होता हुआ क्रमशः मस्तिष्क की ओर बढ़ने लगा।

मैं समस्त दिन पट्ट पर बैठा रहा। अपराह्न के समय हवा का प्रवाह न होने पर रस्सी खींचकर माझी लोग नौका ले जा रहे थे। इसीलिए हमारी नौका किनारे के समीप होकर अग्रसर हो रही थी। सहसा पुष्प भारावनत एक पाटली वृक्ष दिखलायी पड़ा। न जाने क्यों उसे देखते ही मैं आनन्द से चीत्कार उठा—"वर्षौली, देखो-देखो, कितना अनुपम है यह पाटली वृक्ष।"

चीत्कार सुनते ही वर्षौली मेरे निकट आ खड़ा हुआ। बोला—"वर्षधर, समस्त दिन धूप में बैठे-बैठे लगता है तुम्हारा माथा गर्म हो गया है। पुष्प भारावनत पाटली वृक्ष तो यहाँ यत्र-तत्र मिलते हैं। इसमें नवीन क्या देखा?"

मैंने कहा—"वर्षौली, इसमें नयापन है। अवश्य है। किन्तु मैं उसकी व्याख्या कर तुम्हें समझा नहीं सकता। ....पर मेरी समस्त सत्ता जैसे मुझे झकझोर कर कह रही है—यही है वह स्थान।"

वर्षौली हँसने लगा। किन्तु आचार्य भृगुपाद उसी क्षण बाहर निकल आए। शायद उन्होंने मेरी बात सुन ली थी। मेरे निकट आकर पीठ पर हाथ रखते हुए वे बोले—"वत्स, तुम ठीक ही कह रहे हो। इस वृक्ष में विशेषता है। मैंने जैनाचार्य प्रभव के मुख से जो कथानक सुना था वह स्मरण हो आया है। लगता है यही है वह वृक्ष।"

आचार्य ने आर्य सोमप्रभ को नौका किनारे लगाने को कहा। बोले—"इस स्थान का मनोयोग से निरीक्षण करना होगा।"

नौका बाँधे जाने पर हम किनारे उतरे। तट पर चढ़कर पाटली वृक्ष के निकट पहुँचे। वर्षौली को लक्ष्य करते हुए मैंने आचार्य से कहा—"पाटलीवृक्ष बहुत देखे हैं किन्तु इतना सघन और रक्तवर्ण पाटलीवृक्ष कभी नहीं देखा।"

सहसा आर्य सोमप्रभ ने आचार्य देव की दृष्टि आकृष्ट करते हुए कहा— "देखिए-देखिए, इधर गौर से देखिए।"

उनकी दृष्टि का अनुसरण करते हुए हम भी उधर ही देखने लगे। देखा उस पाटलीवृक्ष की सर्वोच्च डाल पर एक नीलकंठ पक्षी बैठा है। बार-बार वह मुख खोलता है और कीट पतंग स्वयं आकृष्ट होकर उसके मुख में प्रवेश करते हैं। बहुत देर तक हम उस दृश्य को देखते रहे। ऐसा दृश्य साधारणतया नहीं देखा जाता। कारण संग्रह के लिए प्रयास करना पड़ता है। किन्तु यहाँ तो स्वतः ही सब कुछ हो रहा है। आचार्य देव आर्य सोमप्रभ से बोले—"मुझे राजधानी के लिए यह स्थान उपयुक्त लग रहा है। इस स्थान पर यदि राजधानी बनायी गयी तो संसार की समस्त सम्पदा स्वतः ही उस पुण्यशाली राजा के आश्रित हो जाएगी।"

सोमप्रभ ने आचार्य के कथन का अनुमोदन किया। स्थपति ने मिट्टी खोदकर उसपर जल डालकर कुछ परीक्षण-निरीक्षण किया। फिर बोला— "दुर्ग निर्माण के लिए भी यह भूमि अति उत्तम है।"

हमलोगों के तो आनन्द की कोई सीमा नहीं थी। क्योंकि जिस स्थान निर्धारण के लिए हम कई दिनों से प्रयास कर रहे थे वह आज सफल हो गया था। फिर मेरे आनन्द का कारण तो और भी विशिष्ट था। मैंने ही तो इस स्थान की ओर गुरुदेव का ध्यान आकृष्ट किया था। गुरुदेव हँसते हुए सोमप्रभ से कह रहे थे—"इस यात्रा का श्रेय वर्षधर को प्राप्त हुआ है।"

मैंने गुरुदेव के चरण स्पर्श करते हुए कहा—"गुरुदेव ऐसा कहकर आप मुझे लज्जित न करें। किन्तु इस वृक्ष के विषय में जैनाचार्य प्रभव से आपने जो कथानक सुना है उसे सुनने की इच्छा है।"

फिर तो सभी ने उस कथानक को सुनने की इच्छा प्रकट की। गुरुदेव ने कहा—"लौटते समय सन्ध्या के पश्चात् वह कहानी बतलाऊँगा।"

सन्ध्या के पश्चात् हम सब आचार्य देव को घेरकर बैठ गए। कल पूर्णिमा थी अतः संध्या होते ही चन्द्रदेव उदित हो गए। सद्य जागे हुए शिशु की आँखों की भाँति वह लोहित लग रहा था। गुरुदेव ने कहना प्रारम्भ किया :

बहुत दिन पहले की बात है। उन दिनों उत्तर मथुरा में देवदत्त नामके एक श्रेष्ठी रहते थे। वहाँ के समृद्धिशाली श्रेष्ठियों में वे प्रमुख थे। तरुणावस्था में होने पर भी उन्हीं की प्रतिष्ठा अधिक थी।

एक बार वे दक्षिण मथुरा में वाणिज्य के लिए गए। वहाँ जयसिंह नाम के एक श्रेष्ठी से उनका व्यवहार सूत्र में परिचय हुआ। वह परिचय क्रमशः

घनिष्ठ होता हुआ मैत्री में परिवर्तित हो गया। जयसिंह ने एक दिन देवदत्त को भोजन के लिए अपने घर आमन्त्रित किया।

जयसिंह के अग्निका नामक एक बहन थी। उस जैसी रूपवती नारी उस समय अन्य नहीं थी।

देवदत्त प्रथम दर्शन में ही उसकी ओर आकृष्ट हो उठा। उसके मन में अग्निका के प्रति प्रेम जागृत हो गया। अग्निका उन्हें भोजन परोस रही थी। देवदत्त उस पर से दृष्टि हटाना ही नहीं चाहता था। किन्तु अधिक देर तक देखते रहना भी तो सम्भव नहीं था। न जाने वह क्या सोचती या जयसिंह मन में क्या सोचता? यह सोचकर मनोभावों का गोपन कर किसी भाँति भोजन शेष किया। भोजन की समाप्ति के पश्चात् अधिक देर वह वहाँ नहीं रुका। किन्तु अपने आवास पर आकर भी वह अग्निका को भूल नहीं पाया। परोसने में रत अग्निका का स्वेद-बिन्दु शोभित मुख उसे स्मरण होने लगा। वह सोचने लगा—क्या मनुष्य में इतना रूप होना सम्भव है? लगता है विधाता ने शंख से खोदकर मुक्ता से आकृष्ट कर मृणाल से सँवारकर किरणों के कुर्चक से प्रक्षालित कर सुधा चूर्ण से धोकर रजत रस से पोंछकर कूटज कुन्द और सिन्धुवार पुष्पों की धवल कान्ति से सजाकर उसका निर्माण किया है। उसे परिवेशन करते समय अग्निका के गण्डस्थलों पर लज्जा से जो मधुर लालिमा धावित होती थी वह भी उसे बार-बार याद आती रही।

देवदत्त ने मन स्थिर कर लिया। दूसरे दिन सुबह ही उसने अपने विश्वस्त अनुचरों में से एक को जयसिंह के समीप अपना निवेदन लेकर भेजा। जयसिंह ने भी उस निवेदन का अनुमोदन किया। बोले—"पात्र के रूप में देवदत्त सर्व प्रकारेण अग्निका के उपयुक्त है। बाधा इतनी ही है कि वह शीघ्र ही उत्तर मथुरा को प्रत्यावर्तन करेगा फिर निकट भविष्य में वह दक्षिण मथुरा लौटकर आएगा कि नहीं यह अनिश्चित है। अग्निका के प्रति मेरा स्नेह है असीम। अतः मैं उसको इतनी दूर देना नहीं चाहता हूँ। फिर भी इस विवाह की सम्मति दे सकता हूँ यदि देवदत्त शपथ लेकर कहे वह दक्षिण मथुरा में ही अवस्थान करेगा, स्वगृह नहीं लौटेगा। अन्ततः अग्निका के प्रथम सन्तान होने तक वह इसी स्थान पर रहेगा।"

देवदत्त यह बात सुनकर चिन्तित हो गया। घर पर वृद्ध माता-पिता थे। इसके अतिरिक्त उसका समस्त व्यवसाय-वाणिज्य उत्तर मथुरा में था। किन्तु अग्निका की आशा का परित्याग करना भी उसके लिए सम्भव नहीं था। प्रेम

के लिए मनुष्य क्या नहीं करता ? अतः देवदत्त ने भी अन्ततः स्वगृह प्रत्यावर्तन न कर वहीं अवस्थान करने की प्रतिश्रुति दे दी। एक शुभदिन अग्निका और देवदत्त का विवाह हो गया।

देवदत्त अग्निका को पाकर माता-पिता की बात तो एक प्रकार से भूल ही गया।

पुत्र माता-पिता को भूल सकता है किन्तु माता-पिता पुत्र को नहीं भूल सकते। कुछ वर्ष बीत जाने पर भी जब देवदत्त गृह नहीं लौटा तो वे चिन्तित हो उठे। वार्द्धक्य और पुत्र के प्रवास ने उन्हें जर्जरित कर डाला। अतः विवश होकर उन्होंने देवदत्त को एक पत्र भिजवाया। उस पत्र में अन्य नाना प्रकार की बातों के साथ लिखा—'पुत्र, तुम्हारे वियोग में रो-रोकर हमलोग आँख खोकर चतुरिन्द्रिय बन गए हैं। यम का आदेश पालन करने का समय आ गया है। यदि तुम हमलोगों को जीवित देखना चाहते हो तो पत्र पढ़ते ही सब काम छोड़कर यहाँ चले आओ।'

पत्र-पढ़कर देवदत्त विकल हो उठा। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। हाय! क्यों उसने जयसिंह की शर्त स्वीकार कर ली ? यदि नहीं की होती तो आज यह विषम स्थिति उपस्थित नहीं होती। वह माता-पिता को क्या प्रत्युत्तर दे? यदि उसके एक भी सन्तान हो जाती तो वह प्रतिज्ञामुक्त हो सकता था किन्तु वह भी अभी तक नहीं हुआ। अब वह क्या करे? जिन माता-पिता ने उसे स्नेह-प्रेम देकर पाला-पोसा क्या वह उन्हें इस जीवन में देख नहीं पाएगा? देवदत्त जितना ही यह सब सोचने लगा उतनी ही बाल्यकाल की स्मृतियाँ मस्तिष्क में उभरने लगी। इन स्मृतियों ने तो उसे और भी व्याकुल कर दिया। [क्रमशः

जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ

[पूर्वानुवृत्ति]

गुजराती : कन्हैयालाल भाईशंकर दवे अनुवाद : भँवरलाल नाहटा

पार्श्वयक्ष

पार्श्वनाथ भगवान के इस यक्ष का वर्ण श्याम, हाथी जैसा मुख, कच्छप वाहन, चार हाथ जिनमें क्रमशः बिजौरा, सर्प, नाग व नकुल धारण किये होते हैं। शिल्प रत्नाकर और त्रिषष्टि शलाका चरित्रकार उसके मस्तक पर सर्पफणा होने का उल्लेख करते हैं। दिगम्बर ग्रन्थकार उसके हाथ में सर्प, पाश, वरद मुद्रा आदि होना सूचित करते हैं। पार्श्वयक्ष की एक प्रतिमा बम्बई के प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम में होने का डा० सांकलिया ने उल्लेख किया है। इस प्रतिमा के मस्तक पर तीन फण युक्त नाग, वाहन कच्छप और ऊपर के दोनों हाथों में नाग पकड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त पार्श्वयक्ष की ऐसी स्वतंत्र प्रतिमा अन्यत्र प्राप्त होना ज्ञात नहीं है।

पद्मावती

पार्श्वयक्ष के साथ यक्षिणी पद्मावती है। इसका वर्ण रक्त, कुक्कुट वाहन और चार हाथों में पद्म, पाश, अंकुश व बिजौरा धारण किये रहना बतलाया है। रूपमण्डन, त्रिषष्टि शलाका चरित्र और शिल्प रत्नाकर में कुक्कुट के साथ सर्प का वाहन होने का विशेष उल्लेख किया गया है। दिगम्बर ग्रन्थकार लोग पद्मावती के अनेक भेद निरूपण करके उसके चार, छः, आठ या चौबीस हाथ होने का उल्लेख करते हैं। इनमें चार हाथों वाली पद्मावती के दो हाथ में पद्म, तीसरे में अंकुश और चौथे में माला धारण किये होती है। जबकि छः हाथ की प्रतिमा के आयुधों में क्रमशः पाश, खड्ग, माला, अर्द्धचन्द्र, गदा और दंड की कल्पना है। आठ हाथ वाली मूर्त्ति के उपरोक्त छः के अलावा मुसल और वरद मुद्रा या अभय व्यक्त करना बतलाया है। चौबीस हाथों वाली पद्मावती के हाथ में क्रमशः शंख, चक्र, खड्ग, बालेन्दु, पद्म, नीलपद्म, धनुष, माला (कुंत), पाश, कुश (दर्भ), घंटा, बाण, दंड, ढाल, त्रिशूल, कुठार, वज्र, माला, फल, गदा, पत्र, पल्लव आदि आयुध बनाने का शास्त्रकारों ने निर्देश किया है।

वैदिक धर्म में पद्मावती की कल्पना तो है ही। देवी-कवच में "पद्मावती पद्मकोशे" लिखते हुए उसका स्थान पद्मकोश पर होने का

महापुराणकार ने सूचित किया है। नारदीय महापुराण में उसके पूजन बलिदान आदि उपासना के विधान दिये हैं। इसी प्रकार रुद्रयामल में अनेक देव-देवियों के विधानों में, पद्मावती के पूजन अर्चन का भी प्रयोग दिया गया है।

जैन सम्प्रदाय में पद्मावती का स्थान एक तांत्रिक देवी के रूप में उच्च और महत्वपूर्ण है। उसकी उपासना के हेतु भैरव पद्मावती कल्प नामक ग्रन्थ इस सम्प्रदाय में विशेष प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त अद्भुत पद्मावती कल्प, रक्त पद्मावती कल्प, पद्मावती स्तोत्र, पद्मावती पूजन आदि अनेक तंत्र ग्रन्थ उसकी उपासना हेतु उपलब्ध हैं। इन सबमें पद्मावती की उपासना विविध कामनाओं की पूर्ति के लिए तांत्रिक प्रयोग में वर्णित है। जैन संप्रदाय में चार तीर्थंकर और चार शासन देवियां मुख्य मानी जाती है उनमें पद्मावती की भी गणना की गई है।

ज्ञानार्णव तंत्र और निरूतर तंत्र के आधार से ज्ञात होता है कि पद्मावती को श्रीकुल की देवी रूप में माना जाता था। इसके अतिरिक्त नित्याओं में भी इनका समावेश होना नित्याशोडषिकार्णवकार बतलाते हैं। बौद्धों की तारा के साथ भी कितना ही साम्य होना साधन माला से विदित होता है।

पद्मावती की संख्याबद्ध प्रतिमाएँ गुजरात में प्राप्य हैं। प्रभास पाटण में तपागच्छ के उपाश्रय में नीले आरस पाषाण की पद्मावती प्रतिमा है। उसके चार हाथ हैं, अर्द्ध पद्मासन लगा कर विराजित है और दूसरा पैर लटकता हुआ दिखाया है। पाटण में खेतरपाल पाड़ा नामक मुहल्ले के शान्तिनाथ मंदिर में पद्मावती की प्रतिमा है जिसके चार हाथों में से दो में अंकुश, तीसरे में पाश और चौथे में बिजौरा है। शत्रुंजय पर झालाकुंड के विश्रान्ति स्थान के दाहिनी ओर टेकरी पर, शंखेश्वरजी में देहरी नं० १२ में, भावनगर में आदीश्वरजी के मन्दिरजी में, अहमदाबाद के निकट नरोडा के पास पार्श्वनाथ जिनालय में, जमालपुर की टोकरशा की पोल में स्थित पार्श्वनाथ मन्दिर में एवं डा० पण्ड्या अभ्यासगृह के कला प्रदर्शनी में भी पद्मावती की मूर्त्तियाँ प्राप्त है। इसके उपरान्त गुजरात में पद्मावती की पाषाण एवं धातु निर्मित संख्याबद्ध प्रतिमाएँ मिलती हैं। अहमदाबाद के पास नरोडा में पद्मावती की लाल प्रतिमा है।

मातंग यक्ष

चरम तीर्थंकर भगवान महावीर के इस यक्ष का वर्ण श्याम, वाहन हाथी और दो हाथों में एक में नकुल और दूसरे में बिजौरा होता है। दिगम्बर लोग भी मातंग यक्ष का सामान्य वर्ण श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार ही प्रस्तुत

करते हैं पर उसके दो हाथों में वरदमुद्रा व बिजौरा बतलाते हैं एवं विशेष में उसके मस्तक के पीछे धर्म चक्र रखना सूचित करते हैं। मातंग यक्ष के दो प्रकार हैं। सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ भगवान का यक्ष भी मातंग ही है। महावीर स्वामी के मातंग के जबकि दो हाथ हैं तो सुपार्श्वनाथ के यक्ष के चार हाथ होने का विधान है। इस प्रकार विधानानुसार दोनों यक्ष अलग-अलग मालूम पड़ते हैं। मातंग यक्ष की एक प्रतिमा शंखेश्वरजी में देहरी नं० २ में होने का प० पू० स० जयन्तविजयजी महाराज ने 'शंखेश्वर महातीर्थ' नामक ग्रन्थ में बतलाया है। किन्तु उसमें आयुध, वाहनादि का व्यवस्थित वर्णन नहीं देने से वह महावीर या सुपार्श्व किस तीर्थंकर का मातंग है स्पष्ट नहीं होता। मध्य प्रान्त के देवगढ़ किले में और ग्वालियर के किले में इस यक्ष की सुन्दर प्रतिमाएँ मिली हैं।

सिद्धायिका

मातंग यक्ष की इस यक्षिणी का वर्ण नील, वाहन सिंह और चार हाथ है जिनमें पुस्तक, अभय, बाण और मातुलिंग (बिजौरा) धारण किया होता है। निर्वाण कलिका और त्रिषष्टिकार बिजौरा के बदले वीणा बतलाते हैं। दिगम्बर ग्रन्थकार उसके दो हाथ बतलाकर उसमें वरद मुद्रा व पुस्तक होने का कहते हैं। सिद्धायिका नाम वैदिक सिद्धाम्बिका से कुछ साम्य रखता है, दोनों के आयुधों में सामान्य अन्तर मालूम पड़ता है। सिद्धायिका की स्वतन्त्र प्रतिमा गुजरात में होना अज्ञात है किन्तु महावीर भगवान के परिकरों में उनके यक्ष के साथ कितनी ही मूर्तियाँ प्राप्त हैं।

श्रुतदेवता या सरस्वती

वैदिक सम्प्रदाय की भाँति जैन धर्म में भी सरस्वती की उपासना की जाने का अनेक ग्रन्थों से विदित होता है। इस सम्प्रदाय में वह श्रुत देवता रूप में मान्य होने से सद्विद्या प्राप्त करने व वाक्पति होने की इच्छा वाले व्यक्तियों ने उसकी विविध विधानों द्वारा पूजा, अर्चा और तांत्रिक उपासनाएँ की हैं। श्रुतदेवता की प्रार्थना और उपासना के कितने ही उल्लेख भगवती सूत्र, पक्खीसूत्र और महानिशीथ में मिलते हैं। इसके पश्चात् तो सैकड़ों ग्रन्थों में श्रुत देवता का ध्यान, पूजा आदि के उल्लेख मिलते हैं। इसके उपरान्त उसकी उपासना हेतु स्वतंत्र ग्रन्थ भी प्रभावक आचार्यों ने लिखे हैं। तदनुरूप यंत्र पट्ट भी विधानोक्त ग्रन्थों में पाये जाते हैं। इस प्रकार जैन सम्प्रदाय में श्रुत देवता और सरस्वती का अनोखा स्थान है। इन सब ग्रन्थों के उल्लेखों

को देखते सरस्वती की उपासना अति प्राचीन काल से चली आ रही मालूम देती है।

मथुरा की खुदाई में एक जैन स्तूप, कितनी ही प्रतिमाएँ, आयाग पट्ट आदि मिले हैं, उनमें सरस्वती की मूर्त्तियाँ भी हैं। यह स्तूप भगवान पार्श्वनाथ के समय में निर्मित था जिसका पुनरुद्धार वीर संवत १३०० में बप्पभट्टिसूरि ने कराया था। बप्पभट्टिसूरि का समय ई० सन् का आठवाँ शतक होना विद्वानों ने माना है। इस मान्यतानुसार मथुरा के स्तूप का पुनरुद्धार आठवीं शताब्दी में हुआ ज्ञात होता है। इसमें से सरस्वती की प्राचीन प्रतिमाएँ प्राप्त होने के कारण भी जैन सम्प्रदाय में सरस्वती पूजा अति प्राचीनतम होना व्यक्त होता है। आचार दिनकर, प्रतिष्ठाकल्प और निर्वाण कलिका आदि ग्रन्थों में सरस्वती के मूर्ति निर्माणादि का विधान मिलता है। उनमें उसके चार हाथों में बाँये तरफ कमल, वीणा एवं दाहिने तरफ पुस्तक और अक्षमाला होने का उल्लेख है। दिगम्बर ग्रन्थकार श्वेताम्बरों से मिलता-जुलता वर्णन देकर विशेष में उसका वाहन मोर बतलाते हैं। कई ग्रन्थकार उसके हाथों में वीणा के बदले वरद मुद्रा भी सूचित करते हैं।

सरस्वती की ऐसी मूर्त्तियाँ गुजरात के कितने ही जैन मन्दिरों में प्राप्त है। शत्रुंजय पर जयतल वेदि के दाहिनी ओर निवाण में एक देहरी में सरस्वती की मूर्ति विराजमान हैं जिसके दो हाथ हैं जिनमें माला व वीणा धारण की हुई है, वाहन के रूप में मोर रखा है। ऐसी ही अन्य प्रतिमाएँ प्रभास में दादा पार्श्वनाथ के मन्दिर में एवं अन्य मन्दिरों में मिली हैं। उनमें देवी अर्द्ध पद्मासन लगाके विराजित है और हाथ में कमल, माला, वीणा व पुस्तक धारण किये बतला कर उसके वाहन स्वरूप हंस प्रस्तुत किया है। विमलवसही की देहरी नं० ३६ के गुंबज में सरस्वती की एक प्रतिमा उत्कीर्ण है। लुणगवसही की देहरी नं० २०-२१ में सरस्वती की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। अहमदाबाद में ऋषभदेव भगवान के मन्दिर में भी सरस्वती की एक प्राचीन मूर्ति मिली है। इसके अतिरिक्त गुजरात के अन्यत्र भी कितनी ही प्राचीन अर्वाचीन सरस्वती की प्रतिमाएँ जैन मन्दिरों में प्राप्त हैं। कितने ही प्राचीन जैन धर्म-शास्त्रों में सरस्वती की अभिनव कलायुक्त मूर्त्तियाँ चित्रित मिलती हैं।

विद्या देवियाँ

सरस्वती के बारह भेद जिस प्रकार हिन्दू मूर्त्ति विधान में बतलाये हैं उसी

प्रकार जैन सम्प्रदाय में भी श्रुतदेवी सरस्वती के सोलह उपभेद बतलाये हैं। ये सब सरस्वती की विविध कल्पनाओं को विद्यादेवी के रूप में परिचित कराते हैं। विद्या देवियों के प्राचीन उल्लेख आवश्यक चूर्णि और उसकी हरिभद्रसूरि कृत टीका में और संघदासगणि कृत वसुदेव हिण्डी में मिलते हैं। इसके लिए ऐसी मान्यता है कि भगवान ऋषभदेव ने जब संसार त्याग किया और साधु बने तब कच्छ और महाकच्छ के पुत्र नमि और विनमि तलवार लेकर उनके पीछे-पीछे घूमने लगे। नागराज धरणेन्द्र को ज्ञात होने पर उसने कुमारों को ऋषभदेव के पीछे-पीछे भ्रमण करने का कारण पूछा। उन्होंने कहा, "भगवान हमें राज्य का बराबर भाग बाँट दें—यही इच्छा है।" धरणेन्द्र ने कहा, "अब वे संसार से अलग हो गए हैं, जल कमलवत् बिल्कुल निर्लेप हो गए हैं।" फिर धरणेन्द्र ने उन्हें वैताढ्य पर्वत के आसपास का प्रदेश बाँट दिया। किन्तु वहाँ पैदल मार्ग से नहीं जा सकने के कारण आकाश गामिनी खेचरी विद्या द्वारा गंधर्वों और पन्नगों की अड़तालीस हजार विद्याएँ उन राजकुमारों को सिखलाईं। इससे राजकुमार प्रसन्न हुए और धरणेन्द्र का खूब आभार माना। इनमें महारोहिणी, प्रज्ञप्ति, गौरी, विद्युत्सूचि, महाज्वाला, तिरस्कारिणी, बहुरूपा आदि अधिष्ठायिका देवियों की विद्याएँ मुख्य थी। पीछे उन दोनों ने अपने उत्तर और दक्षिण विभागों में अनुक्रम से ५० व ६० नगर स्थापित कर उसके सोलह विभाग कर सबके निकाय जैसे नाम रखे। इनमें आठ निकाय नमि के एवं आठ विनमि के थे। इन सब निकायों के नाम विद्या देवियों के नाम पर रखे गए थे, जैसे कि गौरी से गौरिक, गांधारी से गांधार, मानवी के आधार पर मानव, मातंगी से मातंग, कालिका नाम के आधार से कालकेश आदि। राजधानी में वे भगवान ऋषभदेव की स्थापना की।

अतः विद्या देवियों की प्राचीनता जैन सम्प्रदाय के उद्गम काल जितनी प्राचीन होना पौराणिक आख्यायिकाओं से सूचित है। इन विद्या देवियों में से कइयों की उपासना प्रभावक जैनाचार्यों ने करके विविध प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की थीं ऐसा सूत्रकृताङ्ग, वसुदेव हिण्डी, पउम चरिय, पद्म चरित्र, त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र, समराइच्चकहा, कुवलयमाला, उपमिति भव प्रपंच कथा, तिलक मंजरी, सुपासनाह चरियं, कुमारपाल प्रतिबोध और अन्य संख्याबद्ध जैन लब्ध प्रतिष्ठित ग्रन्थों के आधार से विदित होता है। इससे जैन सम्प्रदाय में विद्या देवियों की परम्परा अति प्राचीन काल से चली आ रही थी कहा जा सकता है और उनकी उपासना सकाम और निष्काम उभय

प्रकार से उपासकों ने सिद्ध की है। संक्षेप में हिन्दू धर्म में जो स्थान दश महाविद्याओं का है, वैसा ही स्थान जैन सम्प्रदाय में विद्या देवियों का माना जाता है। इन देवियों के मूर्त्ति विधान की समालोचना जैन और जैनेतर शास्त्रकारों ने निरूपण की है उसे क्रमशः यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

रोहिणी

इस देवी का वर्ण श्वेत, वाहन गाय और चार हाथों में अक्षमाला, बाण, धनुष और तलवार धारण किया हुआ होता है। दिगम्बर ग्रन्थकार लोग उसके चारों हाथ में क्रमशः कुंभ, शंख, पद्म और फल होना बतलाते हैं।

प्रज्ञप्ति

इसका वर्ण श्वेत, वाहन मयूर, चार हाथों में से दाहिने दो में वरद और शक्ति, बाँयें दो में शक्ति और मातुलिंग होता है। आचार दिनकर में इसके केवल दो हाथ बतला कर उनमें कमल व शक्ति का निर्देश किया है। जब कि दिगम्बर ग्रन्थकार उसके दो हाथ में चक्र और तलवार होना बतलाते हैं।

वज्र शृंखला

इसका वर्ण शंख जैसे, पद्मासन पर विराजित, चार हाथों में दाहिने दो में वरद और शृंखला (सांकल), एवं बाँये दो में शक्ति और मातुलिंग (बिजौरा) होता है। आचार दिनकर केवल उसके दो हाथ बतला कर उनमें गदा और शक्ति रखते हैं। दिगम्बरों ने उसके लिए कोई अन्य विशेषता नहीं बतलाई है।

वज्रांकुशा

इस देवी का वाहन हाथी, वर्ण स्वर्णाभ, हाथ चार हैं जिनमें अनुक्रम से वरद, वज्र, अंकुश और मातुलिंग (बिजौरा) धारण किया हुआ होता है। आचार दिनकर में उसके चार हाथों में वज्र, ढाल, खड्ग और भाला (कुंत) बतलाया है। दिगम्बर ग्रन्थकार उसका वाहन पुष्पयान (पुष्पक विमान) बतलाकर दो हाथों में वज्र और अंकुश की कल्पना प्रस्तुत करते हैं।

चक्रेश्वरी

इसका वाहन गरूड़, वर्ण विद्युत्वत् और चारों हाथों में चक्र धारण किये हुए होते हैं। दिगम्बर ग्रन्थकार उसे जंबुनदा नाम से अभिहित करते हैं और दो हाथों में तलवार व भाला बतलाकर मयूर को वाहन रूप में प्रस्तुत करते हैं।

नरदत्ता

स्वर्णाभ वर्ण, महिष वाहन, चार हाथ हैं जिनमें से दाहिने दो में वरद और खड्ग, तथा बाँयें दो में ढाल और मातुलिंग धारण किया होता है। आचार दिनकर में उसके केवल दो हाथ बतलाकर उनमें खड्ग और ढाल होना सूचित करते हैं। दिगम्बर लोग उसका वाहन मयूर और दोनों हाथों में वज्र एवं कमल रखते हैं।

काली

पद्म के आसन पर विराजित, श्याम वर्ण, चार हाथ हैं जिनमें अक्षमाला, गदा, वज्र और अभयमुद्रा धारण किये हैं। आचार दिनकर में उसके दो हाथों में गदा और वरद मुद्रा होने का उल्लेख किया है। दिगम्बर ग्रन्थकारों के मतानुसार उसके दोनों हाथों में दण्ड तथा खड्ग होना मालूम होता है।

महाकाली

यह तमाल वृक्ष के सदृश कान्ति वाली, नर (पुरुष) वाहिनी, चार हाथों में क्रमशः अक्षमाला, वज्र, अभय और घण्टा धारण करती है। आचार दिनकर में उसके चार हाथों में माला, फल, घण्टा, व वरदमुद्रा होना बतलाया है। दिगम्बर लोग महाकाली के चारों हाथों में धनुष, खड्ग, फल और चक्र का उल्लेख करते हुए उसका वाहन शव (?) बतलाते हैं।

गौरी

स्वर्णाभ वर्ण, गोह वाहन, चार हाथों में वरद, मूसल, अक्षमाला और कमल धारण किये रहती है। दिगम्बर लोग उसके दो हाथ में कमल बतलाते हैं।

गान्धारी

कमलासन पर विराजित, नीलवर्ण, चार हाथ जिनमें वरद, मूसल, वज्र और अभयमुद्रा, धारण करती हैं, कथंचित् दो हाथ में वज्र और वरद भी होते हैं। दिगम्बरों ने इसका वाहन कूर्म—कछुवा बतला कर दोनों हाथों में चक्र और खड्ग होना सूचित किया है।

महाज्वाला

बिडाल वाहिनी, अग्नि ज्वाला सुशोभित उभय कर, श्वेतवर्णा महाज्वाला होती है। निर्वाणकलिका में उसका वाहन वराह एवं असंख्य शस्त्र धारिणी बतलाया है। दिगम्बर ग्रन्थकारों के मतानुसार चार हाथ जिनमें धनुष, ढाल, तलवार और चक्र होने और वाहन महिष होने का उल्लेख है।

मानवी

श्याम वर्णा, कमलासन विराजित, चार हाथों में क्रमशः वरद, पाश, पल्लवयुक्त शाखा एवं अक्षमाला धारण किये होती है। दिगम्बर ग्रन्थकार उसका वाहन वराह बतलाकर आयुध में केवल त्रिशूल का ही उल्लेख करते हैं।

वैराट्या

अजगर वाहिनी, श्याम वर्णा, चार हाथों में खड्ग, सर्प, ढाल और सर्प धारण किया होता है। दिगम्बर लोग उसका वाहन सिंह बतलाते हुए उपकरण रूप में केवल सर्प ही प्रस्तुत करते हैं।

अच्छुप्ता

विद्युत् वर्णा, अश्व वाहिनी, चार हाथों में खड्ग, बाण, धनुष और ढाल धारण किया होता है। दिगम्बर ग्रन्थकार भी ऐसा ही वर्णन करते हुए विशेष में तलवार होना सूचित करते हैं।

मानसी

श्वेत वर्णा, हंसवाहिनी, हाथ में अक्षमाला के कंकण एवं चार हाथों में क्रमशः वरद, वज्र और अक्षमाला पकड़े हुए होती हैं। आचार दिनकर में उसके दो हाथ एवं उनमें वरद मुद्रा और वज्र होना बतलाते हैं। दिगम्बर लोग श्वेताम्बरों सा मिलता-जुलता वर्णन कर विशेष में वाहन सर्प होने का उल्लेख करते हैं।

महा मानसी

यह सिंहवाहिनी, श्वेतवर्णा, चार हाथों में वरद, खड्ग, ढाल और कुण्डिका धारण किये हुए होती है। निर्वाण कलिकाकार ढाल के बदले कमण्डलु रखते हैं। जबकि दिगम्बर ग्रंथकार उसका वाहन हंस बतला कर चार हाथों में अक्षमाला, वरदमुद्रा, अंकुश और माला की कल्पना प्रस्तुत करते हैं।

विद्या देवियों की स्वतंत्र प्रतिमा गुजरात में किसी भी स्थान के जैन मन्दिरों में पूजित होना अज्ञात है। किन्तु विमलवसही के रंग मण्डप में मध्यस्थित गोल गुम्बज के प्रत्येक स्तंभ पर एक-एक विद्या देवी को उसके आयुध और वाहन सहित रखा है। इनमें प्रत्येक देवी खड़ी हुई, सुन्दर अलंकार और वस्त्रों से सुसज्जित, वाहन के साथ कलायुक्त शिल्प सौष्ठव के अनन्य प्रतीक प्रस्तुत करती हुई शास्त्रीय रीत्यानुसार निर्मित है। पाटण के पंचासरा पार्श्वनाथ के प्राचीन मन्दिर में रंग मण्डप के अन्दर काष्ठमय सुन्दर गुम्बज,

स्तंभ, उपरवर्ती मदनिकाएँ और पट्टक आदि में शिल्पकला की अद्‌भुत तक्षण कला उत्कीर्ण है। इस मण्डप का कितना ही भाग हेमचन्द्राचार्य ज्ञान-मन्दिर में रखा हुआ है जिसमें तीर्थंकरों के कितने ही चरित्रोपरान्त विद्या देवियों और शासन देवियों की भी कितनी ही प्रतिमाएँ उत्कीर्ण मिली है। अब यह काष्ठ शिल्प कहीं अन्य स्थान में ले जाया गया है। पाटण के एक प्राचीन जैन मन्दिर के काष्ट शिल्प में भी सोलह विद्या देवियों की स्वरूप-मूर्त्तियाँ मिली हैं। इस प्रकार विद्या देवियों की सेव्य प्रतिमाएँ तो नहीं मिलती, फिर भी शृंगार मूर्त्तियों में उनके स्वरूप मिलते हैं। विद्या देवियों के प्राचीन चित्र छानी में विजयदानसूरि महाराज के भण्डार में ताडपत्रीय ओघनिर्युक्त, पिण्ड निर्युक्ति आदि ग्रन्थों में चित्रित मिलते हैं। ये चित्र चौदहवीं शती के पूर्वार्द्ध में निर्मित हुए बतलाते हैं। इसके अतिरिक्त श्री देवचंद लालभाई ने स्तुति संग्रह के जो ग्रन्थ प्रकाशित किए, उनमें भी उपर्युक्त विधान वाले विद्या देवियों के चित्र निष्णात चित्रकारों द्वारा तैयार कराके दिए हैं।

पाटण और आबू की भाँति गुजरात के अन्य जिनालयों में भी विद्या देवियों की शृंगार मूर्त्तियाँ होनी चाहिए, यह अनुमान समीचीन ही है। इसके अतिरिक्त जैन सम्प्रदाय के तांत्रिक ग्रन्थ, यंत्र, पट्ट आदि में भी विद्या देवियों के विधान और चित्र भी प्राप्त होना संभव है।

प्रकीर्ण प्रतिमाएं

जैन प्रतिमा विधान के इन दो प्रकरणों में जैन मूर्तियों का सामान्य उल्लेख प्रस्तुत करते हुए तीर्थंकरों, शासन-देवियों, यक्षों और विद्या देवियों के स्वरूप शास्त्रीय विधान से और गुजरात में संप्राप्त मूर्त्तियों का परिचय प्रस्तुत किया है। जैन सम्प्रदाय के इन मुख्य देवों के अतिरिक्त सेकड़ों अन्य देव-देवियाँ हैं, जिनके विधान मंत्र-तंत्र के ग्रन्थों में प्राप्त है। इन सब देवों के केवल वर्णन मिलते हैं किन्तु उन मूर्त्तियों का समाज में प्रचार हुआ ज्ञात नहीं होता। क्योंकि कामनापूर्ति हेतु कुछ वैसे स्वरूप उपासना-अनुष्ठानादि हेतु बनाकर कार्य पूर्ण होने पर विसर्जन कर देने का पुरश्चरण के ग्रन्थों में होने से उनकी स्वतंत्र मूर्त्तियाँ बना कर मंदिरों में स्थिर करने की समाज को आवश्यकता नहीं लगी होगी।

इसके अतिरिक्त अन्य देवों में ग्रह और दिक्पाल[२७] मुख्य है। जैन सम्प्रदाय में उनका पूजन अर्चन हिन्दू धर्म की भाँति ही किया जाता है। ये सभी देव साधारण देव माने जाते हैं। ये सभी ग्रह अलग-अलग या एक ही पट्ट में बनाने की परम्परा जैन मन्दिरों में प्रचलित है। जैनों के साम्प्रदायिक ग्रन्थों में ग्रहों को प्रत्येक दिशा में अधिनायक बतलाया है। ग्रहों के विधान के लिए जैन और हिन्दू मूर्ति शास्त्रों में खास अन्तर न होते हुए भी सामान्य फेरफारों की यहाँ चर्चा की गई है।

सूर्य का वर्णन हिन्दू वैदिक धर्मानुसार ही प्राप्त है। विशेष में उसकी स्त्री रत्ना देवी को इस सम्प्रदाय में विशेष स्थान प्राप्त है।[२८] सूर्य पूर्व से उदय होने से वह पूर्व दिशा का अधिपति है। दिगम्बरों में उसके केवल सादे स्वरूप की कल्पना है।[२९] इसी प्रकार चन्द्र के लिए दश घोड़ों का रथ बतला कर हिन्दू धर्मानुसार ही वर्णन किया है। निर्वाण कलिका नामक ग्रंथ में तो शिल्परत्न के श्लोक नवग्रह के विधान हेतु अक्षरशः रख दिये हैं। चन्द्र की विशिष्टता में उसे वायव्य दिशा का अधिपति और हाथ में अमृत कुंभ होने का आचार दिनकर में सूचित किया है। मंगल के लिए दो प्रकार के वर्णन मिलते हैं। आचार दिनकर में उसके हाथ में कुहाड़ा बतला कर, उसे ईशान दिशा का अधिपति बतलाया है। जबकि निर्वाण कलिकाकार शिल्परत्नानुसार वरद, शक्ति, शूल और गदा होने का उल्लेख करते हैं। बुध के लिए भी मंगल की भाँति दो विधान दिए हैं। पहले में उसे हंसारूढ़ और पुस्तक धारण किए बतला कर, आचार दिनकर कार ने चन्द्र-पुत्र और उत्तर दिशा का अधिपति रूप में भी उल्लेख किया है। जबकि दूसरे में हिन्दू मूर्ति विज्ञान के अनुरूप वर्णन है। दिगम्बर लोग उसके हाथ में केवल पुस्तक होना बतलाते हैं। गुरु के भी दो विधान मिलते हैं, इनमें से एक में आचार दिनकर कार ने बुध के अनुरूप हंसारूढ़ और हाथ में पुस्तक और ईशान दिशा का अधिपति बतलाया है। जबकि अन्य में शिल्परत्नानुसार ही निर्वाण कलिकाकार का वर्णन है। शुक्र के लिए आचार दिनकर में सर्प वाहन और हाथ में कुंभ बतला

---

२७ आबू की विमलवसही के पास चौमुखजी का मंदिर (खरतरवसही) जो सलावटों का मंदिर कहलाता है, उसमें उसके मंडोवर में दिक्पालों की पत्नियों के साथ सुन्दर मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण है।

२८ आचार दिनकर पूजाविधि में सूर्यमन्त्र।

२९ द्रष्टव्यः प्रतिष्ठा सारोद्धार।

कर अग्नि दिशा का स्वामी रूप में निर्दिष्ट किया है। दिगम्बर लोगों ने उसके चार हाथों की कल्पना कर क्रमशः उनमें पाश, सर्प, ढाल और सूत्र होना उनके ग्रन्थ प्रतिष्ठा सारोद्धार में लिखा है। शनि के विधान में उसका वाहन कूर्म और हाथ में परशु की कल्पना कर उसको पश्चिम दिशा का अधिपति कहा है। दिगम्बर लोग विशेष में उसके हाथ में सूत्र देते हैं। शनि की भाँति राहु के भी परशु के उपरान्त सिंह वाहन और नैऋत्य विदिशा का अधिपति बतलाया है। दिगम्बर लोग विशेष में उसके लिए ध्वज चिह्न प्रस्तुत करते हैं। इस सम्प्रदाय में केतु तो सर्प देवता रूप में माना जाता है, उसके हाथ में सर्प और वाहन भी सर्प है। संक्षेप में कहा जाय तो पूर्व कथनानुसार जैन सम्प्रदाय में ग्रहों का मूर्ति विधान लगाना हिन्दू मूर्ति विधान के सदृश ही है। जैन मन्दिर में कतिपय मूर्ति के नीचे पद्मासन में या पाद पीठ में नवग्रह उत्कीर्ण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त मन्दिरों के शिल्प और द्वार पर भी नवग्रह मिल जाते हैं पर स्वतंत्र प्रतिमाएँ देखने में नहीं आईं।

जैन धर्म में लक्ष्मी, गणेश, क्षेत्रपाल, चौंसठ योगिनियाँ और इन्द्र के परिचारक हरिनिगमेषी की मूर्त्तियाँ भी पूजी जाने का प्राचीन जिनालयों से प्राप्त स्वरूपों के आधार पर ज्ञात होता है। पर उनके विधान के लिए कोई खास वैशिष्ट्य नहीं है। इन्द्र के अनुचर हरिनिगमेषी का मुख बकरे जैसा बतलाया है, अन्य सभी वर्णन सामान्य यक्षों के अनुरूप ही होता है। मथुरा की खुदाई में वैसी कुछ मूर्त्तियाँ मिली हैं।

अनुवादक का वक्तव्य

इस ग्रन्थ में विद्वान लेखक ने जैन प्रतिमाओं में तीर्थंकर, यक्ष-यक्षिणी आदि अनेक विधाओं का परिचय दिया है। किन्तु कुछ बातें एकदम अछूती रह गई हैं जिन पर दिशा सूचन करना आवश्यक है।

तीर्थंकरों के माता-पिता की मूर्त्ति कई विद्वानों ने परिकर के साथ होने का अनुमान किया पर चौबीस तीर्थंकरों की माताओं की मूर्त्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। शत्रुंजय एवं ऋषभदेव भगवान के मन्दिरों में प्रभु के समक्ष खड़े हुए हाथी पर अपने पौत्र भरत चक्रवर्ती के साथ विराजित मरूदेवी माता की प्रतिमाएँ तो अनेकशः मिलती ही है। शत्रुंजय पर मरूदेवी टोंक स्वतंत्र है तथा जैसलमेर, बीकानेर आदि में चतुर्विंशति जिन मातृका पट्ट भी सोलहवीं शताब्दी की अनेक प्राप्त है जिनमें माता की गोद में तीर्थंकर-शिशु भी बतलाया गया है। लगभग ४५ वर्ष पूर्व मैंने क्षत्रियकुण्ड में एक गुप्तकालीन त्रिशला

माता की स्वतंत्र प्रतिमा देखी थी जिसमें भगवान महावीर-शिशु उनके गोद में थे।

शत्रुंजय पर नमि-विनमि आदि ध्यानस्थ खड़े मुनियों की एवं पाँच पांडव की खड्गासन में तथा कुन्ती-द्रोपदी की बैठी हुई प्रतिमाएँ भी संप्राप्त है। खरतरवसही के पृष्ठ भाग में स्वतंत्र मंदिर भी है। बीकानेर के ऋषभदेव स्वामी के मंदिर में भी स्वतंत्र देहरी में उपर्युक्त प्रतिमाएँ हैं। द्रौपदी की प्रतिमा हाथ जोड़े हुए है।

जैन प्रतिमा विधान में बहु प्रचलित गणधर मुद्रा है। शत्रुंजय पर ऋषभदेव जी के प्रथम गणधर पुण्डरीक स्वामी की पद्मासन मुद्रा में विराजमान प्रतिमाएँ अनेक टूकों में हैं। बीकानेर में भी ऋषभदेव जिनालय में विद्यमान है। किन्तु गणधर मुद्रा का एक और विधान विशेष प्रचलित है जिसमें पाट पर एक पाँव, और एक नीचे रखे हुए रहते हैं। ऐसी ही प्रतिमाएँ अनेक प्रभावक आचार्यों की भी बनने लगी। शत्रुंजय पर जिनरत्नसूरि, जिनप्रभसूरि और दादा साहब की प्रतिमाएँ तो प्रचुर संख्या में उपलब्ध हैं। पाटण के पंचासर पार्श्वनाथ जिनालय तथा अन्य स्थानों में अनेक पूर्वाचार्यों की प्रतिमाएँ इस मुद्रा में उपलब्ध हैं। कई प्रतिमाओं में दोनों गोडे नीचे किए हुए मिलते हैं। इधर दो सौ वर्षों में आचार्यों की प्रतिमाओं की शैली में पर्याप्त परिवर्तन आ गया है। मूर्त्ति विधान में इसका उल्लेख नहीं आने से थोड़ी चर्चा यहाँ की है। श्रावक-श्राविकाओं की प्रतिमाएँ भी शत्रुंजय, आबू आदि स्थानों में पर्याप्त उपलब्ध हैं, जो तत्कालीन वेश-भूषा, संस्कृति पर भी प्रकाश डालता है।

मूर्त्ति विधान में यंत्र, पट्ट तथा तीर्थ पटों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। पट वस्त्र को भी कहते हैं। प्राचीन काल से वस्त्र पर चित्रित करने की प्रथा प्रचलित थी व आज भी है। पाषाण पर आयाग पट आदि मथुरा कला में दो हजार वर्ष पूर्व के उपलब्ध है। शत्रुंजय, गिरनार, आबू आदि सभी तीर्थों के पट्ट शताब्दियों से प्रतिष्ठित होते आये हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। नवपद, बीस स्थानक, ऋषि मंडल आदि पट्ट भी मूर्त्ति विधान का एक महत्वपूर्ण अंग है। घण्टाकर्ण इत्यादि के विविध यंत्रमय पट्ट भी आजकल गुजरात में विशेष प्रचलित है।

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अनेकान्त ॥ जनवरी-मार्च १९८१

इस अंक में है 'श्वेताम्बर जैन पंडित परम्परा' (अगरचन्द नाहटा), 'आचार्य नेमिचन्द्र और उनका द्रव्य संग्रह' (कमलेशकुमार जैन), 'आत्मा सर्वथा असंख्यात प्रदेशी है' (पद्मचन्द शास्त्री) 'जैन संस्कृति में दसवीं-बारहवीं सदी की नारी' (रमा जैन), 'दक्षिण की जैन पण्डित परम्परा' (मल्लिनाथ जैन), 'यूनानी दर्शन और जैन दर्शन' (रमेशचन्द्र जैन), 'हिन्दी साहित्य में नेमि-राजुल' (कस्तूरचन्द कासलीवाल)।

कुशल-निर्देश ॥ जून १९८१

इस अंक में है 'निह्नववाद' (मूल डा० रमणलाल चिमनलाल शाह, अनु० भँवरलाल नाहटा), 'श्री हेमचन्द्रसूरि' (मूल श्री कल्याण विजयजी, अनु० भँवरलाल नाहटा)।

जिनवाणी ॥ जून १९८१

आचार्य श्री हस्तीमलजी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन दर्शन में ज्ञानवाद (४)' (श्री रमेशमुनि शास्त्री), 'पण्डित, परिभाषा की तलाश में' (डा० भागचन्द्र 'भास्कर'), 'इनकी जिन्दगी आपका फैशन (१)' (हर्षवर्द्धन)।

तीर्थंकर ॥ मई १९८१

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'साधना काया, चित्त, आत्मा (बातचीत, सोनेजी/डा० नेमीचन्द जैन), 'जैन धर्म विश्व प्रसार की संभावनाएँ' (बातचीत, अजित कासलीवाल/डा० नेमीचन्द जैन), 'पानी छानकर क्यों पियें ?' (डा० नेमीचन्द जैन)

तुलसी प्रज्ञा ॥ मई १९८१

आचार्य श्री के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'सम्बोधि और श्रीमद् भागवद् गीता' (रतनलाल जैन), 'भिक्षु जीवन ज्योति' (साध्वी राजीमती), 'जैन ललितकला' (साध्वी कानकुमारी), 'Kramabaddha Paryaya—Reconsidered' (Dr. S. C. Jain), Jain Technical Terms' (Dr. Mohan Lal Mehta)।

श्रमणोपासक ॥ २५ जून १९८१

आचार्य श्री नानालालजी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है "जैन दर्शन में पुद्गल का स्वरूप' (डा० महावीर सिंह मुड़िया), 'नारी जागृति: दिशा एवं स्वरूप' (इला जैन)।

Vol. V No. 3 : Titthayara : July 1981
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD
CALCUTTA-700001